| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|| A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

||Volume 9, Issue 8, August 2020||

फड़ पेंटिंग का परिधानों पर उकेरे जाने से संबंधित एक अध्ययन

DHANWANTI BISHNOI

Associate Professor, Dept. of GPEM, Govt. M.S. College For Women, Bikaner, Rajasthan, India

सार

फड़ पेंटिंग या फड़ धार्मिक स्क्रॉल पेंटिंग और लोक पेंटिंग की एक शैली है, जो भारत के राजस्थान राज्य में प्रचलित है । [1] [2] पेंटिंग की यह शैली पारंपरिक रूप से कपड़े या कैनवास के लंबे टुकड़े पर की जाती है, जिसे फड़ के नाम से जाना जाता है । राजस्थान के लोक देवताओं, अधिकतर पाबूजी और देवनारायण की कथाएं फड़ों पर चित्रित हैं। भोपा, पुजारी-गायक पारंपरिक रूप से चित्रित फड़ को अपने साथ ले जाते हैं और इन्हें लोक देवताओं के मोबाइल मंदिरों के रूप में उपयोग करते हैं, जिनकी पूजा क्षेत्र के रेबारी समुदाय द्वारा की जाती है। पाबूजी की फड़ें सामान्यतः लगभग 15 फीट (4.6 मीटर) लम्बी होती हैं, जबकि देवनारायण की फड़ें सामान्यतः लगभग 30 फीट लम्बी होती हैं। परंपरागत रूप से फड़ों को वनस्पति रंगों से रंगा जाता है।

इस कला के पारंपरिक उदाहरण देवनारायण की फड़ और पाबूजी की फड़ हैं । [3] [4] इस शैली में लगभग चालीस साल पहले श्री लाल जोशी और प्रदीप मुखर्जी ने क्रांति ला दी थी। रामचरितमानस, गीत गोविंद, कुमारसंभव, भगवद गीता और हनुमान चालीसा की कहानियों पर आधारित है । [5] फड़ पेंटिंग की कला विशेष रूप से जोशी समुदाय द्वारा प्रचलित थी। हालाँकि, 1960 में, श्री लाल जोशी ने इस कला शैली को सीखने के लिए सभी के लिए जोशी कला केंद्र नामक एक स्कूल खोला। वर्तमान में, स्कूल को राजस्थान के भीलवाड़ा शहर में चित्रशाला कहा जाता है।

परिचय

राजस्थान के भीलवाड़ा क्षेत्र में कपड़े की पृष्ठभूमि पर लोक देवता देवनारायण एवं पाबूजी आदि के जीवन पर आधारित एवं उनकी शौर्य गाथाओं पर बनाए जाने वाले पारम्परिक अनुष्ठानिक कुंडलित चित्र, पड़/फड़ चित्र कहलाते हैं। फड़ केवल एक चित्र भर नहीं माना जाता, यह अपने आप में देव स्वरूप है। इसलिए इसे बनाने वाले चित्रकार और बाँचने वाले भोपा, दोनों ही इसे पवित्र मानते हैं। भोपा पूरी फड़ को साक्षात् देवता मानते हैं, वे इसे प्रति दिन धूप-अगरबत्ती लगाते हैं और इसे घर में पवित्र स्थान पर रखते हैं। वे एक बार इसे खोलने के बाद बिना बाँचे बंद नहीं करते। फड़ के पुराने हो जाने पर उसे इधर-उधर नहीं फेंका जाता बल्कि पुष्कर ले जाकर पवित्र सरोवर में विसर्जित किया जाता है।

अधिकांश फड़ चित्रकारों का मानना है कि राजस्थान के भीलवाड़ा एवं शाहपुरा में बनाए जाने वाले फड़ चित्रों का इतिहास लगभग ६०० वर्ष पुराना है। वे मानते हैं कि यहाँ के छीपा चित्रकारों ने फड़ चित्रण के लिए मेवाड़ शैली के अंतर्गत एक विशिष्ट चित्रण शैली का विकास किया जिसे फड़ चित्र शैली के रूप में भी जाना जाता है। यहाँ के छीपा चित्रकार अपने को जोशी कहते हैं, जिनकी अनेक पीढ़ियाँ यहाँ बीत गयी हैं। राजस्थान का छीपा समुदाय कपड़ा छपाई का कार्य करता है। जोशी फड़ चित्रकार मानते हैं कि वे छीपा समुदाय से हैं परन्तु उनके पूर्वज कपड़ा छपाई नहीं बल्कि चित्रित जन्मकुण्डलियाँ बनाते थे और दीवारों पर चित्रकारी करते थे। उनके एक समूह ने कालांतर में फड़ चित्रांकन आरम्भ किया।[1,2]

आज जितने भी जोशी फड़ चित्रकार परिवार कार्यरत हैं वे सभी एक ही कुटुंब के सदस्य हैं। यह जोशी चित्रकार भीलवाड़ा से लगभग दस किलोमीटर की दूरी पर स्थित पुर गाँव के निवासी थे। उस समय इस गाँव को पुरमंडल कहते थे। इनके कुछ कुनबेदार आज भी इस गाँव में रहते हैं, इनकी कुलदेवी का स्थान भी यहीं है। वर्ष में एक बार एवं महत्वपूर्ण अवसरों पर अपनी कुलदेवी की पूजा हेतु यह सभी जोशी परिवार यहाँ आते रहते हैं। सन् २००० तक यहाँ गणेश जोशी नामक फड़ चित्रकार कार्यरत थे, अब उनके परिवार ने चित्रकारी बंद कर दी है। जोशी चित्रकार परिवारों में प्रचलित स्मृतियों के अनुसार पुर गाँव में दो जोशी चित्रकार भाई रहते थे, जब मुग़ल सम्राट शाहजहाँ के समय में राजा सुजान सिंह द्वारा सन् १६३१ ईस्वी में शाहपुरा नगर बसाया गया उस समय, पुर गाँव से पाँचाजी जोशी नामक चित्रकार को शाहपुरा बुला लिया गया, तभी से शाहपुरा में फड़ चित्रकारी आरम्भ हुई।

यह कथाचित्र, पड़ अथवा फड़ चित्र कहलाते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि फड़ एक अपभ्रंश है जिसका प्रादुर्भाव पढ़ शब्द से हुआ है जिसका तात्पर्य है पढ़ना। जब भोपा लोकगायक स्थानीय शौर्य गाथाओं पर आधारित इन चित्रों को प्रस्तुत करते हैं तब ऐसा लगता है कि वे इन चित्रों के माध्यम से उन शौर्य गाथाओं को पढ़ रहे हैं। परन्तु फड़ शब्द अधिक मान्य और आम प्रचलन में है। स्वयं भोपा भी इन चित्रों को फड़ ही कहते हैं।

कुछ लोग फड़ चित्रों को पटचित्रों से भी जोड़ कर देखते हैं, क्योंकि यह दोनों ही कपड़े की सतह पर चित्रित किये जाते हैं और इनका स्वरुप विवरणात्मक होता है। परन्तु पट, सूती कपड़े की दो सतहों को आपस में चिपका कर बनाया जाता है जबकि फड़ कपड़े की एक सतह से बनाई जाती है। पटचित्र ओडिशा की जगन्नाथ उपासना से सम्बद्ध होते हैं और फड़ चित्र राजस्थान के लोक देवताओं की शौर्य गाथाओं पर आधारित हैं।

फड़ चित्र किस प्रकार बनना आरम्भ हुए इस सम्बन्ध में अनेक मत प्रचलित हैं। कुछ फड़ चित्रकार मानते हैं कि प्राचीन काल में भोपा गायक राजस्थान में प्रचलित लोकदेवताओं की गाथाएं गा-गाकर सुनाया करते थे। उन्हें लगा की यदि इन कथाओं पर आधारित चित्र बनवाकर गायन के साथ प्रस्तुत किये जाएं तो प्रस्तुति अधिक प्रभावशाली बन पड़ेगी और यजमानों से अधिक धन-धान्य मिलेगा। अतः उन्होंने फड़ चित्रकारों के पूर्वजों से इन लोक कथाओं पर आधारित चित्र बनाने का आग्रह किया और इस प्रकार फड़ चित्र बनना आरम्भ हुए।

राजस्थान की लोक कथाओं के जानकार डॉक्टर महेंद्र भानावत द्वारा प्रस्तुत किंवदंती के अनुसार जब देवनारायण जी का जीवनकाल पूर्ण होने वाला था तब भक्तों ने आग्रह किया कि लोक छोड़ने से पहले वे अपनी छवि भक्तों के लिए स्मृति स्वरुप प्रदान कर जाएँ। इस आग्रह पर स्वयं देवनारायण ने छोचू भाट, जोकि उनके कुल का भाट था, से कहा कि तुम चतर छीपा के घर जाओ और उससे मेरी एक तस्वीर बनवाकर लाओ। भाट ने जाकर चतर छीपा को कहा कि वह उसे भगवान की तस्वीर बना दे, 'तस्वीर कैसी बनेगी यह मैं बताता हूँ—उसमें चौबीस तो अवतार बनाओ और देवनारायण के कुल संबंधी, ज़मीन-आसमान में जितनी घटनाएं हुई हैं वह सब बनाओ'। चित्र पूरा होने पर भाट उसे लेकर देवनारायण के पास गया। चित्र देखकर भगवान बोले, 'अरे भाट मैंने तो एक चित्र के लिए कहा था तू ये क्या फड़ की फड़ ले आया'। तभी से यह चित्र, फड़ चित्र कहलाये और इन्हें बनाने की परंपरा आरम्भ हुई।

राजस्थान में जो पारम्परिक फड़ चित्र बनाये जाते हैं वे निम्न प्रकार के हैं—

१. देवनारायण की फड़

देवनारायण, राजस्थान के पूज्यनीय लोक देवता हैं जिन्हें विष्णु का अवतार माना जाता है। ऐतिहासिक रूप से उनके जीवन काल के सम्बन्ध में मतभेद है। कुछ विद्वान उनका जीवन काल विक्रम संवत् १२०० से १४०० के मध्य मानते हैं। फड़ चित्रों की दृष्टि से यह सबसे प्राचीन फड़ है तथा इसकी माप भी सबसे बड़ी होती है। इसकी लम्बाई २० हाथ से २५ हाथ तक होती है। इसमें देवनारायण (बगड़ावत) की कथा का चित्रांकन किया जाता है। इस फड़ की प्रस्तुति दो भोपा, जंतर वाद्य बजाते हुए करते हैं। यह भोपे गूजर, राजपूत तथा बलाई जाति के होते हैं। इस फड़ के यजमान गुज्जर समुदाय के लोग होते हैं।

२. पाबूजी की फड़

यह फड़, राजस्थान की सर्वाधिक लोकप्रिय फड़ है। इसकी लंबाई १५ से २० हाथ तक होती है। इसमें मारवाड़ के कोलू गांव में जन्मे पाबूजी की जीवनगाथा चित्रित की जाती है। लक्ष्मण का अवतार माने जाने वाले पाबूजी का जीवन काल विक्रम संवत् १३१३ से १३३७ का माना जाता है। इन्हें रबारी अथवा राइका ऊँट पालक समुदाय के लोग पूजते हैं। माना जाता है कि राजस्थान में सर्वप्रथम ऊँट लाने का श्रेय पाबूजी को ही है। इस फड़ की प्रस्तुति भोपा एवं भोपी द्वारा रावणहत्था वाद्य बजाते हुए की जाती है।[2,3]

३. गोगाजी की फड़

गोगाजी जिन्हें जाहर वीर गोगा भी कहा जाता है राजस्थान के लोकप्रिय लोक देवता हैं, इन्हें पीर के रूप में पूजा जाता है। इन्हे सर्पों का देव भी कहा जाता है क्योंकि ये सर्प दंश से रक्षा करते हैं। विश्वास किया जाता है कि इनका जन्म गुरु

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|| A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

||Volume 9, Issue 8, August 2020||

गोरखनाथ के आशिर्वाद से नवीं शताब्दी में हुआ था। इन्हें गायों की सेवा और रक्षा के लिए माना जाता है। राजस्थान एवं गुजरात के रबारी समुदाय में इनकी बहुत मान्यता है।

४. रामदेव की फड़

कहते हैं कि रामदेव की फड़ का प्रचलन पाबूजी की फड़ के बाद हुआ और यह पहले हाड़ौती क्षेत्र में प्रचलित हुई, वहाँ से यह मेवाड़ और मारवाड़ तक फैल गयी। रामदेव, राजस्थान के एक महत्वपूर्ण लोक देवता हैं जिन्हें विष्णु का अवतार माना जाता है। इनका जीवनकाल सन् १३५२ से १३८५ तक माना जाता है। इनकी मान्यता यहाँ के मेघवाल समुदाय में बहुत अधिक है। यह फड़ चमार, बलाई, भांभी और ढ़ेड़ जाति के लोग बँचवाते हैं। यह फड़ भोपा-भोपिन दोनों मिलकर बाँचते हैं और साथ में रावणहत्था भी बजाया जाता है।

५. माताजी की फड़

इसे भैंसासुर की फड़ भी कहा जाता है। इस फड़ का प्रचलन वागरी समुदाय में है। इस फड़ का वाचन नहीं होता, इसे घर में रखा जाता है।

उपरोक्त फड़ों के अतिरिक्त रामदला एवं कृष्णदला की फड़ें भी बनाई जाती हैं। इन दोनों ही फड़ों का प्रचलन अधिक पुराना नहीं हैं।

भारत में कुंडलित कथाचित्र बनाने की अनेक समृद्ध परम्पराएं हैं, परन्तु फड़ चित्र उन सबसे इस अर्थ में भिन्न होते हैं कि इनमें कथानक अथवा घटनाओं का चित्रण क्रमशः एक के बाद एक नहीं किया जाता। चित्र में विभिन्न घटनाएं यहाँ-वहां बिखरी रहती हैं। इस कारण प्रदर्शन के समय पूरा चित्र एक साथ खोलना पड़ता है, उसे धीरे-धीरे क्रमशः नहीं खोला जा सकता। फड़ चित्रों का प्रारूप इस प्रकार निरूपित किया जाता है कि उसे देखकर दर्शक कथा का ठीक से अनुमान नहीं कर सकते। बिना भोपा द्वारा की गई विवेचना के पूर्ण चित्रित कथा का आनंद लेना संभव नहीं है। कथानक के चित्रण में इसी बिखराव के कारण भोपा-भोपिन को नृत्य अदायगी और भावाभिव्यक्ति का अवसर मिलता है।

फड़ चित्रकार मानते हैं कि फड़ के प्रारूप में स्थान विभाजन में घटनाओं के स्थानों को प्राथमिकता दी गयी है। जैसे पाबूजी की फड़ में अजमेर, पुष्कर, कोलूमण्ड, लंका, सोड़ा गाँव आदि स्थानों की एक निश्चित स्थिति होती है और वहाँ घटने वाली घटनाएँ इनके आस-पास चित्रित की जाती हैं। फड़ में इन घटनाओं का स्थान इतना रूढ़ होता है कि भोपा आँखें बंद करके भी उन्हें इंगित कर सकता है। फड़ में निरूपित चित्रों की प्रस्तुति और प्रतिकृति इस प्रकार संयोजित की गई होती है कि सम्पूर्ण फड़ ही एक रंगमंच का आभास देती है। चित्रों की रेखाएं, आकृतियों की चेष्टाएं, उनका रंग वैशिष्ट्य, उनका बाह्य परिवेश तथा सुसंगत वातावरण सब मिलकर एक नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करते हैं। भोपा-भोपिन द्वारा कथा की भावपूर्ण अदायगी और विवेचना दर्शक को समूची घटनाओं का जीवंत आभास करा देती है।

परम्परागत रूप से फड़ चित्रण के लिए हाथ से बुना मोटा कपड़ा, जिसे रेज़ा या रेज़ी भी कहा जाता था, प्रयुक्त किया जाता था। आजकल मिल का बुना पतला सूती कपड़ा, कोसा एवं सिल्क का कपड़ा भी प्रयोग में लाया जाने लगा है। सबसे पहले फड़ का आधार तैयार किया जाता है, इसके लिए कपड़े को वांछित माप में काट लिया जाता है। अब इसे बिछाकर इस पर चावल का माड़ लगाया जाता है। सूखने पर माड़ लगे कपड़े की सतह को चिकने पत्थर से घोंटा जाता है। घुटाई करने से माड़, कपड़े में बैठ जाता है। कपड़ा एकसार और चिकना हो जाता है, उसकी रंग पकड़ने की क्षमता बढ़ जाती है और रंग उसकी सतह पर फैलता नहीं है।[3,4]

आजकल तो अधिकांशतः सजावटी फड़ चित्र बनाए जा रहे हैं जिनके चित्रण के लिए किसी पारम्परिक विधि-विधान का पालन नहीं करना पड़ता परन्तु अनुष्ठानिक फड़ बनाने के लिए एक निश्चित विधि-विधान है। कपड़े की सतह तैयार हो जाने पर चित्रकार द्वारा उस पर किसी कुंवारी कन्या से पीले कच्चे रंग से चित्रांकन की शुरुआत कराई जाती है। इसके बाद चित्रकार इसी रंग से फड़ का समूचा रेखांकन करता है। अब रेखांकित आकृतियों के चहरे और शरीर में केसरिया रंग भरा जाता है। इसके बाद आवश्यकतानुसार चित्र में क्रमशः पीला, हरा, कत्थई, नीला आदि रंग भर कर फड़ पूरी की जाती है। विभिन्न चरित्रों में रंगों का संयोजन पूर्णतः शास्त्रसम्मत होता है। देवी पात्रों के चेहरे नीले, देव पात्रों के चेहरे लाल, राक्षस एवं पिशाचों के चेहरे काले, सात्विक पात्रों के चेहरे सफेद-नीले बनाये जाते हैं। वैभवशाली, संपन्न और विलासी पात्रों में भी रंग विविधता रखी जाती है।

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|| A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

||Volume 9, Issue 8, August 2020||

फड़ चित्रण की एक अन्य विशेषता यह है कि इसमें विभिन्न आकृतियों का निरूपण उनके महत्त्व के अनुसार किया जाता है। अधिक महत्त्व वाले चरित्र बड़े और प्रमुखता से तथा पूर्ण विवरणों सहित अंकित किये जाते हैं, जबकि सामान्य चरित्रों को छोटा रखा जाता है। जैसे पाबूजी की फड़ में पाबूजी, उनके सरदार और उनकी घोड़ी को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता है, उन्हें आकार में बड़ा तथा ओजपूर्ण बनाया जाता है।

आजकल तो रेडीमेड रंगों एवं ब्रशों का प्रयोग भी होने लगा है परन्तु फड़ चित्रकार, परम्परागत रंग स्वयं ही अपने लिए तैयार करते थे। फड़ चित्रों में सात रंगों का प्रयोग किया जाता है। यह रंग प्राकृतिक संसाधनों से प्राप्त किये जाते हैं जैसे नारंगी रंग पेवड़ी या सिन्दूर से, पीला रंग हरताल से, हरा रंग जंगाल से, भूरा रंग गेरू या हिरमिच से, लाल रंग हिंगलू से, नीला रंग नील से और काला रंग काजल से बनाया जाता है। रंगों को पक्का करने के लिए उसमें खेजड़ी वृक्ष का गोंद मिलाया जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में अक्सर लोग कोई विशेष मनौती पूर्ण होने पर फड़ बँचवाते हैं। कभी-कभी किसी बड़े अनिष्ट की आशंका से बचने के लिए समूचे गाँव के लोग सामूहिक रूप से मनौती मानते हैं और उसके पूरा होने पर सब मिलकर फड़ बँचवाते हैं। जिस दिन फड़ बँचवानी होती है उस दिन का भोपा को न्यौता दिया जाता है। सगे सम्बन्धियों और पास-पड़ोसियों को न्यौता जाता है, छोटे गाँवों में तो समूचे गाँव को बुला लिया जाता है। फड़ सुनने आने वाला प्रत्येक व्यक्ति आरती तथा अन्य महत्वपूर्ण प्रसंगों पर भोपा को पैसे भेंट देना अपना पवित्र कर्तव्य समझता है। इस पूरे आयोजन के दौरान लोग फड़ में पाबूजी का वास मानते हैं और बीच-बीच में हाथ जोड़कर उनका नमन करते रहते हैं। वर्षा ऋतु के चार महीनों में क्योंकि सभी देवता सो जाते हैं इसलिये इन महीनों में फड़ बँचवाना और बनाना बंद रखा जाता है, श्राद्ध पक्ष में भी फड़ नहीं बाँची जाती। भाद्रपद माह की नवमी-दशमी और चैत्र नवरात्री में फड़ अवश्य ही बँचवाई जाती है।

जहाँ फड़ बँचवानी होती है, वहाँ भोपा उसे दो बाँसों की सहायता से खड़ी कर फैला देता है। इसके बाद वह अगरबत्ती जलाता है, दीप प्रज्वलित करता है, गूगल धूप लगाता है और रावणहत्था बजाते हुए जिस देव की फड़ बाँचनी है उसकी आरती गाता है। इसके बाद देव से प्रार्थना करता है कि वे उसे शक्ति प्रदान करें जिससे वह फड़ को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत कर सके। भोपा अपनी पूरी होशियारी से फड़ बाँचता है, अपने गायन और नर्तन से श्रोताओं को रात भर अपनी ओर खींचे रखता है। वह सुबह होते-होते कथा समाप्त करता है। जब तक फड़ पूरी न बाँच ली जाए तब तक उसे समेटता नहीं है।

फड़ प्रस्तुति के दो प्रमुख अंग हैं—कथा वाचन और कथा गायन-नर्तन। यद्यपि मूल कथानक एक ही होता है पर प्रत्येक भोपा उसे अपने ढंग और निज कंठ के सुरीलेपन से विशिष्ट बना देता है। फड़ गायन में मुख्यतः कहरवा द्रुत लय, कहरवा अति विलम्बित लय, कहरवा-ताल मध्य लय और कहरवा मध्य लय का प्रयोग किया जाता है।

सामान्यतः फड़ राजस्थानी बोली में ही बाँची जाती है परन्तु इस पर आँचलिकता का भी प्रभाव रहता है। जैसे मेवाड़ क्षेत्र के भोपा की बोली पर मेवाड़ी और मारवाड़ क्षेत्र के भोपा पर मारवाड़ी बोली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। [4,5]

पाबूजी की फड़ बाँचने वाले भोपे नायक समुदाय के होते हैं। मान्यता है कि फड़ बाँचने का यह अधिकार उन्हें स्वयं पाबूजी द्वारा दिया गया है। किंवदंती के अनुसार पाबूजी के चाँदा और डेमा नामक दो बघेला सरदार थे। वे दोनों भाई थे जो ख़राब नक्षत्रों में जन्म लेने के कारण अभिशिप्त थे और इसी कारण उन्हें बाल्यावस्था में ही जंगल में फिंकवा दिया गया था। वहाँ उन्हें एक भीलनी ने पाल पोसकर बड़ा किया। कालांतर में इन्हीं चाँदा और डेमा के वंशज नायक कहलाए। भीलनी के यहाँ पाले जाने के कारण इन्हें भील भी कहा जाता है। पाबूजी की कथा के अनुसार पाबूजी के अधिकांश साथी नायक जाति के थे।

भोपा फड़ वाचन के समय रावणहत्था नामक वाद्य बजाता चलता है। यह सारंगी से मिलता-जुलता एक सरल वाद्य है, जिसे गज द्वारा बजाया जाता है। गज के दोनों सिरों पर घुंघरू बाँधे जाते हैं जो स्वर के साथ ताल देने का कार्य करते हैं। सुरीली आवाज़ के इस सरल वाद्य को भोपा स्वयं ही बना लेते हैं। डॉक्टर महेंद्र भानावत द्वारा प्रस्तुत किंवदंती के अनुसार रावणहत्था, रावण का प्रिय वाद्य था इसलिए इसका नाम रावण के नाम से जुड़ गया। वह अपने बीसों हाथों से इसे बजाया करता था। पाबूजी जब लंका गए तब उनके साथ गया रतना राइका वहां से यह वाद्य अपने साथ ले आया था। एक मान्यता यह भी है कि शिव भक्त रावण को जब अपनी साधना में सफलता नहीं मिली तब उसने अपने बांये हाथ की नसें निकालकर, हाथ को एक वाद्य का रूप दे दिया और उससे मधुर रागिनी निकाल कर शिव साधना करने लगा। चूंकि रावण का हाथ ही वाद्य बन गया था इसलिए इसे रावणहत्था के नाम से जाना गया।

वर्तमान में राजस्थान में फड़ चित्रकारी का कार्य भीलवाड़ा, शाहपुरा, कांकरौली (राजसमंद) और चित्तौड़ गढ़ में हो रहा है। परन्तु कांकरौली और चित्तौड़ गढ़ स्थानों पर कार्यरत जोशी फड़ चित्रकार भी शाहपुरा अथवा भीलवाड़ा से ही गए हैं।

शाहपुरा में शांति लाल जोशी, दुर्गेश जोशी और राजेंद्र जोशी के परिवार हैं, यह तीनों आपस में सगे भाई हैं। दुर्गेश जोशी और शांतिलाल जोशी को भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। शांतिलाल जोशी के दो बेटे, विजय जोशी एवं अभिषेक जोशी भी इसी कार्य में लगे हैं।

भीलवाड़ा में श्रीलाल जोशी, नन्द किशोर जोशी, कन्हैयालाल जोशी और कैलाश जोशी, जो चारों सगे भाई हैं, के परिवार फड़ चित्रकारी करते हैं। श्रीलाल जोशी के दो बेटे कल्याण जोशी और गोपाल जोशी अच्छे चित्रकार हैं। श्रीलाल जोशी मूलतः शाहपुरा के हैं जो बाद में यहाँ आ बसे थे। नंदकिशोर जोशी के दो बेटों प्रकाश जोशी और मुकुट जोशी ने फड़ चित्रकारी में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। कन्हैया लाल जोशी के दो बेटे राजेश जोशी और मुकेश जोशी इसी क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। कैलाश जोशी का कोई बच्चा यह कार्य नहीं करता है। यहाँ दूसरा चित्रकार समूह, तीन सगे भाइयों— महावीर जोशी, जगदीश जोशी और सुरेश जोशी के परिवारों का है। इन तीनों भाइयों का कोई भी बच्चा चित्रकारी नहीं करता है। यहाँ एक अन्य चित्रकार घनश्याम जोशी भी फड़ चित्र बनाते हैं।

कांकरौली (राजसमंद) में छीतरमल जोशी फड़ चित्रकारी करते हैं। वे मूलतः भीलवाड़ा के हैं परन्तु कुछ वर्ष पहले अपनी ससुराल कांकरौली जाकर काम करने लगे हैं।

चित्तौड़ गढ़ में सत्यनारायण जोशी नाम के फड़ चित्रकार हैं। ये मूलतः भीलवाड़ा के हैं परन्तु तीन-चार पीढ़ियों पहले इनका परिवार चित्तौड़ गढ़ जा बसा था।

पिछले दो दशकों में फड़ चित्रों का स्वरुप और फड़ चित्रकार जोशी समाज बहुत बदल गया है। बदलते हुए आर्थिक-सामाजिक परिवेश में फड़ वाचक भोपा तथा परम्परागत फड़ श्रोता समाज भी काफ़ी हद तक प्रभावित हुए हैं। फड़ चित्रकारों के बच्चे शिक्षित होकर अन्य व्यवसाय अपना रहे हैं। फड़ बँचवाने वाले समाज सिकुड़ रहे हैं। पारम्परिक फड़ चित्रों की माँग बहुत कम हो गयी है। अतः फड़ चित्र भी अब नए रूप में अपना अस्तित्व बना रहे हैं।[5,6]

विचार-विमर्श

कला जीवन का अनुकरण करती है, इसलिए राजस्थान की (Rajasthani Phad painting) पारंपरिक फड़ कला को आधुनिक समाज में प्रासंगिक बनाने के लिए डिजिटल करने का प्रयास किया जा रहा है. धार्मिक अनुष्ठान और मनोरंजन कार्यक्रमों में गौरव बनने वाली इस कला को अब बंद अलमारियां से निकालकर युवाओं से जोड़ने की कोशिश की जा रही है.

दरअसल, राजस्थान की खूबसूरती यहां के (Expansion of 700 years old art) किले, महल और बावड़ियों तक ही सीमित नहीं है. यहां रेत के टीलों, लोक कला, परंपरा और इतिहास में भी इसकी खूबसूरती देखने को मिलती है. राजस्थान में कहानी कहने, कठपुतली नृत्य, हरि कथा और अन्य सामाजिक-धार्मिक गतिविधियों की पृष्ठभूमि के रूप में कला का बड़े पैमाने पर मनोरंजन के क्षेत्र में इस्तेमाल किया जाता रहा है, लेकिन तकनीक के आने से ये सब कहीं पीछे छूटता चला गया. ऐसी ही एक कला है जिसे हम फड़ के नाम से जानते हैं. राजस्थान के भीलवाड़ा से शुरू हुई 700 साल पुरानी फड़ पेंटिंग कहानी कहने का एक माध्यम है. जिसमें ज्यादातर देवी-देवताओं की कहानियां, राजाओं की युद्ध के चित्रण या संदेशों को एक गायक (भोपा) फड़ के जरिए पेश करता था.

सिटी पैलेस के डायरेक्टर एजुकेशन व विशेषज्ञ संदीप सेठी ने बताया कि राजा-महाराजाओं के जमाने में सूती कपड़े को फोल्ड कर चित्रकारी की जाती थी. कोई राजा युद्ध जीतकर आता था या (Traditional Phad Art of Rajasthan) जनता के बीच कोई संदेश पहुंचाना होता था तो कपड़ों पर चित्र बनाकर ले जाए जाते थे, जिसे भोपा गाकर सुनाया जाता था. इसी के जरिए मनोरंजन भी हुआ करते थे. एक दीए के माध्यम से फड़ के उस हिस्से को दिखाया जाता था, जिसके बारे में बताया जा रहा है. ये राजस्थान की पुरानी कला है. जिसे अब नए रूप में पेश किया जा रहा है.

उन्होंने बताया कि तकनीक के जरिए इसे पढ़ाई का माध्यम बनाने के लिए डिजिटल प्लेटफार्म पर भी लाया जा रहा है. एकेडमिक सब्जेक्ट को लेकर प्रदेश के 28 स्कूलों को भी जोड़ा गया है. जिन्होंने जल संरक्षण, नदी संवर्धन, मेटलर्जी, भारत की आजादी के 75 वर्ष, मैनेजमेंट और इकोनॉमी से जुड़े हुए (Digitalization of phad art) सब्जेक्ट्स को भी फड़ पर उतारा गया है. इसे लेकर पहले स्कूलों

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|| A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

||Volume 9, Issue 8, August 2020||

को करीब एक साल तक ट्रेंड किया गया. टॉपिक से जुड़े हुए गाने तैयार किए गए और अब इन्हें किताब और क्यूआर कोड के जरिए डिजिटल किया जा रहा है.

वहीं, फड़ कला को केमिस्ट्री और मैनेजमेंट जैसे सब्जेक्ट के साथ भी जोड़ा गया है. इन विषयों के कुछ टॉपिक्स को सेलेक्ट कर उस पर फड़ तैयार किए गए. केमिस्ट्री के शिक्षक ने बताया कि उनका सब्जेक्ट मेटलर्जी उस पर स्टोरी लिखी गई और उसके कैरेक्टर (Rajasthani Phad art is getting digitized) डिफाइन किए गए. इन कैरेक्टर्स को टॉपिक के क्रम में ड्राइंग्स के जरिए फड़ पर उतारा गया. उदाहरण के लिए मेटल से बर्तन किस तरह से बनते हैं. उसकी कहानी ली. इसके लिए हरियाणा के रेवाड़ी जिले को चुना गया, जहां के पीतल के बर्तन प्रसिद्ध है. इसके इतिहास को फड़ पर उतार कर छात्रों के बीच लाया गया.[6,7]

परिणाम

बहरहाल, राजस्थान में देवनारायण की फड़, पाबूजी की फड़, गोगाजी की फड़, रामदेव की फड़, माता जी की फड़ ग्रामीण अंचलों आज भी प्रसिद्ध है. लेकिन अब इसी फड़ पर रोचक और प्रासंगिक विषयों को उकेरते हुए युवाओं और छात्रों से जोड़ने के लिए स्कूली शिक्षा के साथ-साथ डिजिटल प्लेटफॉर्म पर उतारने का भी प्रयास किया जा रहा है.

फड, ये एक ऐसी भारतीय लोक-कला है जिसका इतिहास 700 साल से भी ज़्यादा पुराना है। फड़ एक लम्बे कपड़े पर बनाई चित्र-श्रृखला होती है जिसके ज़रिये महाकाव्यों की कहानी सुनाई जाती है।इसका सम्बंध क़िस्सागोई से भी है। इस कला की शुरूआत राजस्थान के शाहपुरा और भीलवाड़ा क्षेत्र से हुई थी । भोपा जनजाति के गायक जब स्थानीय लोक देवता देवनारायण तथा पाबुजी की कथाएं सुनाते थे तब यह कलाकृतियां उनके पीछे लगी होती थीं।
फड़ शब्द शायद संस्कृत शब्द पट्ट से लिया गया है जिसका मतलब होता है पेंटिंग के लिये समतल सतह। ये पेंटिंग ऐसे कपड़े पर होती है जिसे लपेटा जा सकता है इसलिये इसका संबंध स्थानीय भाषा के शब्द फड़ से भी हो सकता है,जिसे किसी चीज़ को मोड़ने के अर्थों में इस्तेमाल किया जाता है ।
फड़ चित्रकार मुकुल जोशी हमें फड़ की कला और उसके इतिहास के बारे में बताने जा रहे हैं। वह यह भी बताएंगे कि इसकी प्रक्रिया क्या होती है और आधुनिक युग में इसकी क्या अहमियत है।
पारंपरिक रुप से फड़ कलाकृतियां दो लोक देवताओं दोवनारायण और पाबूजी की कथाओं पर आधारित हुआ करती थीं। देवनारायण मध्यकालीन एक ऐसा देवनारायण मध्यकालीन एक ऐसे व्यक्तित्व थे जिसे विष्णु का अवतार माना जाता था। पाबूजी को भी लोक देवता माना जाता था,जो विश्वास किया जाता है कि,14वीं शताब्दी में राजस्थान के जोधपुर के पास कोलु गांव में रहते थे। पाबूजी की फड़ नाम से प्रसिद्ध फड़ पेंटिंग उनके पवित्र किरदार को लक्ष्मण के अवतार के रूप में पेश करती है जो रामायण में राम के भाई हैं।
मध्यकालीन युग में ग्रामीण क्षेत्रों में सक्रिय गिरोह पशुपालकों के जानवर चुरा लेते थे। ये चोरी इतनी ख़ूनख़राबे वाली होती थी कि इसमें लोग भी मारे जाते थे। भाट द्वारा काव्य शैली में सुनाये जाने वाली कहानियों में चोरी के संघर्ष में मारे जाने वाले लोगों का हिरो की तरह बखान होता है। इन हीरो को स्थानीय लोग देवता मानने लगे थे और शायद इसा तरह से पाबूजी का भी देवता की तरह जन्म हुआ होगा।[7]

| e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2320-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 7.512|| A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

||Volume 9, Issue 8, August 2020||

फड़ कला स्थानीय परंपरा में इतनी लोकप्रिय है कि दशकों से चली आ रही है। राजस्थान में भोपा और भोपी एक अलग जाति है जो कवि और संगीतकार होते हैं। फ़ड़ कलाकृतियां बनाने वाले चित्रकार छीपा जाति के होते हैं, ख़ासकर जोशी कुल के। आज़ादी के पहले शाहपुरा और भीलवाड़ा रियासतें हुआ करती थीं जहां ये चित्रकार रहते थे। 19वीं शताब्दी में शाहपुरा पर राजपूत शासक राज करता था जिसने भीलवाड़ा से चित्रकारों को अपने दरबार में बुलाकर उन्हें तमाम सुविधाएं मुहैया करवाईं थीं।

निष्कर्ष

फड़ चित्रकार सिर्फ़ भोपा के लिये पेंटिंग बनाते हैं जो गांव गांव जाकर इसकी में गा बजाकर कहानियां सुनाते हैं। वे इस दौरान रावण हत्था नामक वाद्ययंत्र का प्रयोग करते हैं। भोपा सूर्यास्त के बाद फड़ पेंटिंग को खोलकर उसे पीछे लगाकर गांववालों के सामने कथा सुनाते हैं जो देर रात तक चलती है। शायद यही कारण है कि इन कलाकृतियों को फड़ कहा जाता है क्योंकि स्थानीय बोली में फड़ का मतलब मोड़ या तह होता है।[7]

संदर्भ

1. चिलब्रीज़। भारतीय भित्ति चित्र और पेंटिंग . ठंडी हवा। पृ. 14-. आईएसबीएन 978-81-904055-1-5.
2. ^ राकेश कुमार (2007)। भारतीय चित्रकला का विश्वकोश . अनमोल प्रकाशन। पी। 83. आईएसबीएन 978-81-261-3122-8.
3. ^ डेलरिम्पल, विलियम (2009)। नौ जीवन । ब्लूम्सबरी पब्लिशिंग पीएलसी। पृ. 96-97. आईएसबीएन 978-1-4088-0153-6. 13 जून 2010 को पुनःप्राप्त . {{cite book}}: |
4. ^ "राजस्थान के भोपा" । राष्ट्रीय। 4 सितंबर 2009 । 13 जून 2010 को पुनःप्राप्त .
5. ^ शिल्प गुरु पुरस्कार 2007 और 2008 । नई दिल्ली: कपड़ा मंत्रालय, भारत सरकार। 2008. पीपी. 40-41.
6. ^ चौधरी, ज़िन्निया रे। "फड़ पेंटिंग: राजस्थान के यात्रा मंदिर आधी सहस्राब्दी के बाद लुप्त हो रहे हैं" । Scroll.in . 15 मार्च 2019 को लिया गया ।
7. ^ "चित्राशाला: फड़ कला को जीवित रखना" । बेहतर भारत . 24 सितंबर 2010 । 15 मार्च 2019 को लिया गया ।